eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जनजीवन

[1]डॉ0 प्रियंका रानी
[1]सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला स्ना0 महाविद्यालय, बिन्दकी, फतेहपुर उ0प्र0।

Received: 10 Jan 2022, Accepted: 20 Jan 2022, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2022

Abstract

प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न आदिवासी साहित्यकारों का सन्दर्भ ग्रहण करते हुए आदिवासियों के जीवन की ज्वलन्त समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। सरल समाज के ताने बाने में रचे बसे इन आदिवासियों की जीवन की धुरी जंगल, पहाड, नदी, झरनें, विभिन्न जंगली वनस्पतियाँ आदि है जिनका अस्तित्व नगरीकरण के कारण संकट में पडता चला जा रहा है। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व का संरक्षण करने के लिए उन्हे कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है और वे एक दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए विवश है। निर्मला पुतुल, महाश्वेता देवी, भगवती शरण मिश्र, हरिचरण अहरवार, संजीव, मैत्रेयी पुष्पा आदि साहित्यकारों ने अपने साहित्य में उनकी सरल जीवन शैली एवं उनके जीवन में आने वाली बाधाओं को विविध रूप में प्रकट किया है।

मुख्य शब्दावली– आदिवासी, जंगल, पहाड, अस्तित्व, संघर्ष जीवन, सभ्यता, सरल समाज, जमीन, आदिवासी साहित्य।

प्रस्तावना

आदिवासी जनजीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर उनकी दयनीय दशा एवं अस्तित्व के संकट के सन्दर्भ में समाज को जागरूक करना आदिवासी साहित्य की प्रमुख विषय वस्तु है। किस प्रकार जमीन, जंगल और जल पर पूंजीपतियों द्वारा धीरे धीरे अपना वर्चस्व कायम करना जारी है। इस ज्वलन्त मुददे् को सरकार की नीतियों में पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। एक ओर अपने अस्तित्व के संकट से जूझते हुए वे नगर की ओर पलायन करते है तो दूसरी ओर नगर के हाषिये पर अपना जीवन यापन करने के लिए विवश है। ऊँची ऊँची इमारते और कल–कारखाने जैसे इन आदिवासियों के विकास को मुँह चिढ़ाते से प्रतीत होते है। आदिवासी साहित्य और आदिवासी का समाज का संबंध भी अटूट एवं नजदीकी है। संभवतः आदिवासी समाज से आदिवासी साहित्य अलग रह ही नही सकता।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

आदिवासी साहित्य का एक भाग समझे जाने वाले लोक साहित्य का आदिवासी समाज से बहुत निकट का संबंध है। इस संबंध की सदियाँ गवाह है। यही साहित्य उनकी प्रेरणा प्रवृति तथा जीवन संघर्ष के दर्शन करता है।

उद्देश्य–

1. यू0जी0सी0 के पूर्व अध्यक्ष डॉ0 सुखदेव थोरात ने कहा कि ''हमारा समाज आदिवासियों की समस्याओं के बारे में नही जानता। हमें आदिवासियों के बारे में जानने की जरूरत है, जो कि साहित्य के जरिए ही संभव है।'' अतः जागरूकता फैलाना आदिवासियों के गीतों और कथाओं के मूल में जल, जंगल और जमीन तथा प्रकृति ही रहे हैं।
2. विस्थापन, पलायन, गरीबी, शोषण का दंश भयानक होता है, उसकी वेदना को अभिव्यक्त करना।
3. विद्रोह की भावना को समाज के समक्ष सम्प्रेषित करना।
4. आदिवासी के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना ताकि उनके अधिकारों की पैरवी की जा सकें।

निर्मला पुतुल, मैत्रेयी पुष्पा, हरिराम मीणा, महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, पुतुल, मनमोहक पाठक, श्रीपकाश मिश्र, केदारप्रसाद मीणा, वाहरू सोनवणे, संजीव, लीलाधर मंडलोई, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो, भूंजग मेश्राम, मंगलसिंह मंडा, तेजिंदर, राकेश कुमार सिंह, भगवती शरण मिश्र, रोज केरकट्टा, गिरिजाशंकर मोदी, सोनल पी टेटे, ध्वनि केफी, हरिचरण अहरवार आदि साहित्यकारों ने आदिवासियों की जनजीवन पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। ''सभ्यता न वेशभूषा है, न पोशाक। संस्कृति पाउडर, टीका, सरकारी चाकरी, वेतन नहीं है। दोपहर के भोजन में गुड़ और दलिया तथा उबाली दाल के लिए कतार बांध स्कूल आना शिक्षा नहीं। खाद, बीज, भैंसा, मुर्गी पालना, प्रगति नहीं है, आदमी सभ्यता को बनाता है या सभ्यता आदमी को बनाती है?''[1]

भारत के विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगलों से ही बेदखल कर दिया गया। देष में आदिवासियों की समस्या विस्थापन रही है। माफियों की कुल्हाड़ी से जंगल ही नही कटते बल्कि उन जंगलों के माध्यम से जीवनयापन करने वाली आदिवासी जनता का गला भी कटता है। जल, जंगल और जमीन की लड़ाई के पीछे विकास की जो राजनीति है, उस पर निर्मला पुतुल तलखी से वार करती है। आदिवासी समाज पर आधुनिक विकास के पड़ रहे प्रभाव की चिंता ही पुतुल के यहाँ नहीं है, बल्कि ऐसे विकास के खिलाफ असहमति भरा स्वर भी है। निर्मला पुतुल

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

की एक कविता है तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पडेगा हमें।'' इस कविता में विकास के आधुनिक पैरामीटर को नकारती हुई कहती हैं–

''अगर हमारे विकास को मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल–कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी है

आदिवासी के विकास के नाम पर सरकार, दलाल और रईस लोग आदिवासियों को खत्म करना चाहते है। लक्ष्मण सिंह कावड़े ने आदिवासियों के विकास संबंधी यथार्थ का चित्रण अपनी कविता–'आज भी वैसी' में किया है–

''सदियाँ बीत गई
विकास के नाम पर,
आदिवासी
उपेक्षित जीवन जी रहे
बीहड़ 'अबुझमाड़' के जंगलों में,
भूखे और नंगे आज भी।''

जंगल पशु–पक्षी, हरी–भरी घाटियाँ और उसके बीच अपने अधिकारों को लेकर संघर्ष करते आदिवासी इनकी रचनाओं के केन्द्र में है। आदिवासी कभी वनपति कहलाते थे और वन के स्वामी हुआ करते थे वे आज अपनी जमीन और जंगलों से बेदखल होकर अपने अस्तित्व को बचाने का संघर्ष कर रहे है। डॉ0 रामदयाल मुंडा का कथन दृष्टवय है– ''पूरा देश मरूभूमि बनने के कगार पर है जहाँ आदिवासी है वहाँ थोड़ा जंगल बचा है। सरकार के लिए तो यह रेवेन्यू मात्र है। जंगल को बचाना है तो आदिवासी को बचाना होगा। पहले खेती से आधा पेट भरता था तो आधा पेट जंगल से। लेकिन जंगल तो वैसे लोगों के हाथ में चला गया जो जंगल को समूल नष्ट करने पर तुले हैं। जंगल देखते–देखते गायब हो गया। जंगल के आदमी का चेहरा भी उजाड़ हो गया। हम अंदमान निकोबार देखकर आए हैं। देह पर कपड़ा नहीं लगता है पूरा सत ही निचुड गया है। मूलवजह है जंगल नही रहें।''[2]

संजीव का 'सावधान नीचे आग है' (1986) और 'धार' (1990) उपन्यास में मध्य प्रदेश की झरिया क्षेत्र कोयला–माफियों, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, पोषक और क्रूर रूप का

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

चित्रण किया गया है। संजीव के 'पांव तले की दूब' (1995) और 'जंगल जहाँ षुरू होता है' (2020) उपन्यास का विषय झारखंड और बिहार के दूरदराज अंचलों की वास्तविकता से जुड़ा है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में नेपाल की सीमा से जुड़े बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के मिनी चंबल नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में निवास करने वाली थारू जनजाति तथा वहाँ के डाकुओं, नेताओं, पुलिस और प्रशासन के बीच छिड़ी जंग का रोमांच चित्रण हुआ है।

'सरहना' उपन्यास में पुन्नी सिंह ने राजस्थान की एक मात्र आदिम जनजाति सहरिया के जीवन और समस्याओं पर लिखा है। सहरिया एक अत्यधिक पिछड़ा ओर उपेक्षित आदिवासी समुदाय है। जंगल पर आश्रित सहरिया जनजाति के लोग जरूरत पड़ने पर खेती भी करने लगे। इनकी खेती स्थानांतरण खेती की श्रेणी में आती है। खेती में अनाज पैदा नहीं होते ये जंगल से चिरौंजी, शहद, आंवला, महुआ, कत्था, कुरेंटा की दाल, धौली मूसली, गोंद आदि वस्तुएँ इकट्ठी करते और अनाज ले आते थे। बारिश के दिनों में जंगल में कोई उपज नहीं होती इसलिये ये इसके लिए पहले से अनाज बंदोबस्त करके रखते है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में बुंदेलखण्ड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरा जाति के जीवन को अपना विषय बनाया है। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा समाज के लगभग संपूर्ण ताने–बाने, लोग लुगाईयाँ, प्रेम झगड़े की वास्तविक जटिल कहानी का चित्रण हुआ है। नीरा नाहटा ने उचित ही कहा है कि– ''अल्मा कबूतरी अपराधी मानी जाने वाली, एक विशेष जनजाति की जिजीविशा, रोटी की चिंता और जीने के संघर्ष में कूटते–पिटते, बंधते–मरते अविरल लगे रहने वालों का ऐसा का भी यथार्थ है।''[3]

महादेव टोप्पो अपने समाज को संगठित, शिक्षित होने का आह्वाहन करते हैं। अपने अन्याय, अत्याचारों के विरूद्ध उसे स्वंय लड़ाई, लड़नी होगी तभी उपेक्षित बदलाव या परिवर्तन संभव हो पायेगा। 'सबसे बड़ा खतरा' कविता में कवि कहते हैं–

''यह है सबसे बड़ा खतरा/कि हम अपनी पहचान
खो रहे है/खो रहे हैं कि हम अपने स्वाभाविक
स्वर/न मिथिया रहे न गरज रहे हैं/इसी
कारण ऊँची अट्टालिकाओं में/पंखों के नीचे/
हमारी असमर्थता पर मुस्करा रहे हैं
इसलिए मित्र/आओ हम पहले अपने कंठो

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

में गरजती हुई/आवाज भरे।''[6]

आदिवासी कवि जिस समाज में पैदा हुए बड़े हुए, पढ़ लिखकर आगे बढ़े, उसी समाज के हिस्से में आयी दुरावस्था को देखकर दुःखी है, बेचैन है।

प्रकृति और आदिवासी का संबंध बहुत गहरा संबंध है। प्रकृति आदिवासियों की सहचरी रही है। प्रकृति ने उन्हें कभी रूलाया, कभी हंसाया है। आज उसी प्रकृति से उसे बेदखल किया जा रहा है, उससे जंगल, जमीन, जल, फल छीने जा रहे हैं। आदिवासी कवयित्री ग्रेस कुजूर कहती हैं–

''इसलिए फिर कहती है। न छोड़ों प्रकृति को।
अन्यथा यही प्रकृति। एक दिन। मांगेगी।
हमसे/तुमसे/अपनी तरूणाई का।
एक एक क्षण। और करेगी। भयंकर बगावत।
और तब/न तुम होंगे/न हम होंगे।''

आदिवासी लोग चिल–चिलाती धूप में वे काम करने पर भी नहीं थकते क्योंकि वे प्रकृति की गोद में रहते हैं। आदिवासी स्त्री को अभाव, गरीबी और भूख की बड़वाग्नि में जूझना पड़ रहा है। निर्मला पुतुल अपनी कविता 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में कहती हैं–

''तुम्हारें हाथों बने पत्तल पर भरते है पेट हजारों
पर हजारों पत्तल भर नही पाते तुम्हारा पेट
ग ग ग
जिन घरों के लिए बनाती हो झाडू
उन्हीं से आते हैं कचरे तुम्हारी
बस्तियों में।''

झारखंडियों को सखुआ झाड़ी की तरह उजाड़ कर शोषक युकलिप्टस, थेथर को बसाना कहाँ का न्याय है? केसी शासन व्यवस्था है। घर को बेघर करो की यह केसी पंचवर्षीय योजना है। यही पीड़ा कवयित्री की काव्य सृजन की पीड़ा है। सरिता बडाइक ने जो देखी–सुनी और भोगी वेदना है वह कलम के माध्यम से वाणी दी है। झारखंडियों की दुर्गति का वर्णन कवयित्री लिखती है–

''विस्थापन गांव के गांव/किसान से मिली ठाँव।
सरकारी मुआवजा देकर/लिया बिचौलियों ने

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

सादे कागज पे ठेपा/दिखलाया ठेंगा/
आज हमारी पीढ़ी/घर से बेघर।
बड़ी–बड़ी कॉलोनियों में/मांजे जूठे बर्तन।''

मेहरूनिसा परवेज जी का कार्य क्षेत्र आदिवासी जीवन से जुड़ा है। इसलिए मध्यप्रदेश के वर्तमान छतीसगढ़ विशेषकर बस्तर के आदिवासी जीवन और समाज के प्रमाणिक चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं। अज्ञानता, अशिक्षा, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के कारण आदिवासी बच्चे प्रायः व्यर्थ में भटकते हुए अपना बचपन गुजार देते हैं। आदिवासियों का जीवन आर्थिक रूप से विपन्न है। वे अपनी आजीविका के लिए प्रकृति, पशु–पक्षियों एवं खेतों पर निर्भर होते हैं। 'पसेरी भर जवानी'– कहानी में लेखिका कहती है–''बसोड़ों का पूरा अलग ही मोहल्ला है। घर–घर बिनते टोकने, सूप, आँगन में चरत मुर्गियाँ, छत पर गुटरले कबूतर, गली में पले हुए सुअर और धूल में लोटते हुए नंगे बच्चे। ओसारे में टोकने में झूले में पड़े बच्चे और टोकना बिनती माथे तक घूँघट किए बुंदेलखंडी गीत गाती औरत। घर–घर में झगड़े, वही समस्या, वही पीर। बच्चों का भूख से कुलराना–बिलखाना, बारिश–टूटी छतों को जोड़ना।''[7]

शराब बनाना और बेचना आदिवासी समाज का व्यवसाय है। 'टोना' कहानी की काकी कच्ची शराब बनाने और बेचना का कार्य करती है। उससे अपना घर खर्च चलाती है। ''इस छोटे से धनपुजी गाँव में काकी जाने कब से कच्चा शराब बेचने का धंधा करती थी। काकी के तीनों मरद भाग गए चौथी बार काकी इस गाँव के कोतवाल का हाथ पकड़कर यहाँ आ गई। कोतवाल की आस औलाद नहीं हुई थी, तब डूमर–फूल (गुलर फूल) की तरह उसका जन्म हुआ था। कोतवाल के मरने के बाद से काकी शराब बनाने और बेचने की धंधा करने लगी थी।'' आदिवासी परिवार के भरण–पोषण के लिए षराब बेचने का कार्य करते हैं। आदिवासी स्व आश्रित है पराश्रित नहीं है।

संजीव की कई कहानियों में आदिवासी जीवन का यथार्थ उनका समाज, उनके रीति–रिवाज तथा उनके जीवन में होने वाले नाना परिवर्तनों को देखा गया है। 'टीस' कहानी के केंद्र में आदिवासी शिबुकाका है। गाँव में आदिवासियों की झोपड़ियाँ हटाकर खदान शुरू हो गई है। कारखाने के मालिक आदिवासियों को शराब पिलाकर, डराकर जमीन से बेदखल करते हैं। अधिकारी, क्लर्क मुआवजे की रकम खा जाते हैं। तब आदिवासी मजबूर होकर गाँव छोड़कर चले जाते हैं। गाँव छोड़ते आदिवासी को देखकर षिबूकाका कहते हैं–''आज कनाई चला गया, आज

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 5, Issue 01, Jan 2022

खोखन.....आज गंशा.....आज मनतोश ! अब न माँदल बजेगे या, न बाँसुरी, न झांझ, नागपंचमी उत्सव फिका–फिका रह जाएगा।''[8]

निष्कर्ष – आदिवासियों के विविध जीवन संघर्षो, शोषण, अभावों के विविध रूपों, अशिक्षा के कारण प्रचलित रूढ़ियों और अंधविष्वासों, सांस्कृतिक निष्ठाओं, सामाजिक संगठन के स्वरूपों और जीवन निर्वाह के साधनों आदि का महत्वपूर्ण चित्रण है। जल, जंगल और जीना इनकी दृष्टि में व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामुदायिक संसाधन है। आदिवासी जनता आर्थिक क्षेत्रों में भी संघर्ष और चुनौतियाँ का सामना कर रही है। जंगल की हर चीज से उन्हें गहरा लगाव है। आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर रचनाकारों ने सूक्ष्मता के साथ यथार्थ चित्रण किया है। आदिवासी समाज जीविका निर्वाह के लिए पूरी तरह जंगल पर निर्भर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. आदिभूमि–प्रतिभाराय, पृ0 294।
2. अस्तित्व के लिए लडते हुए – डॉ0 रामदयाल मुण्डा अरावली उद्घोष अंक–93 पृ0 10।
3. दस्तावेज – 93 जुलाई–सितम्बर, 2001 पृ0 11।
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 42।
5. निर्मल पुतुल, अरावली उद्घोष, पृ0 93।
6. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और षताब्दी, पृ0 156।
7. मेरी बस्तर की कहानियाँ, मेहरूनिसा परवेज, पृ0 31।
8. दस प्रतिनिधि कहानियाँ – संजीव।